# परिशिष्ट

## पं० टोडरमल स्मारक ट्रस्ट (जयपुर) के प्रकाशनों में विसंगतियाँ

अभी भी दि० जैन समाज में यह चर्चा व्याप्त है कि कतिपय लोग इस भ्रम में हैं कि क्या टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का कानजी पंथ अथवा साहित्य से कोई सम्बन्ध है तथा प्रकाशनों में कुछ विसंगतियां भी हैं क्या ?

सबसे बड़ी विसंगति तो यह ही है कि टोडरमल स्मारक का उद्देश्य ही कानजी के द्वारा प्रतिपादित धर्म का प्रचार करना है, जैसा कि ट्रस्ट-डीड के इस वाक्य से स्पष्ट है—

5— Objects of the Trust shall be—

(1) To prapogate "the tenets of Vitrag Digamber Jain Religion as profounded by Parampujya Sadgurudev Shri Kanjiswami" hereinafter referred to as Digamber Jain Religion for the sake of bravity but itshall always mean religion as profounded by Parampujya Sadgurudev Shri Kanji swami in general.

भला फिर प्रकाशन तो विसंगत होंगे ही। जो विकार सोनगढ़ साहित्य में हैं वही विकार इस ट्रस्ट के प्रकाशनों में हैं। पहले सोनगढ़ का मुखौटा था, अब जयपुर के टोडर मल स्मारक का है। दुकान वही है, साइनबोर्ड बदला हुआ है। कारण है कि चूंकि जनता

जनार्दन सोनगढ़ के विकृत रूप को समझ गया है। अतः दूसरा नाम रखकर माल वही बेचा जा रहा है।

अब प्रकाशनों पर दृष्टिपात करें। यहां सम्पूर्ण का प्रकाशक टोडरमल स्मारक ट्रस्ट (जयपुर) है। विकार तो बहुत हैं किन्तु संक्षेप में इस लेख में यथासम्भव लिखा जा रहा है ताकि धर्म-प्रेमी सावधान हों। ये क्रमशः निम्नलिखित हैं—

(१) आत्मधर्म, वर्ष ३२, अंक ३, सितम्बर १९७६ कवर पृष्ठ पर परम्परा के गोलकान्तर्गत चित्र बने हैं —(१) अर्हन्त भगवान, (२) आचार्य कुन्दकुन्द, (३) आचार्य अमृतचन्द्र, (४) कानजी। इसके आगे खाली गोले बने हैं। पाठक विचार करें कि क्या भगवान महावीर की साधु-परम्परा में अव्रती पुरुष आ सकता है ?

(२) इसी अंक में पृष्ठ २४ पर देखिये—

प्रश्न—सविकल्प द्वारा क्या निर्विकल्प नहीं होता है ?

उत्तर—सविकल्प द्वारा निर्विकल्प नहीं होता, किन्तु कहा अवश्य जाता है क्योंकि विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प में जाता है, यह बताने के लिये सविकल्प द्वारा हुआ, ऐसा कहा जाता है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आता है कि रोमांच होता है। अर्थात् वीर्य अन्दर जाने के लिये उल्लासित होता है, ऐसा बताना है।

पाठक वृन्द, यह उत्तर असत्य है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में पं० टोडरमल जी ने लिखा है—"अब सविकल्प ही के द्वारा निर्विकल्प परिणाम होने का विधान कहते हैं"...... इस प्रकार सविकल्प के द्वारा निर्विकल्प अनुभव होता है।" पं० जी ने चिट्ठी में "रोमांच होता है" लिखा है, उसका अर्थ उपरोक्त रेखांकित वाक्य नहीं लिखा है। ऐसे अश्लील शब्दों का प्रयोग विसंगति है तथा मूल प्रश्न का उत्तर एकदम विरुद्ध है। पाठक रहस्यपूर्ण चिट्ठी अवश्य देखें ताकि भ्रम दूर हो।

ESTED
13-2-05
CHANDRA JAIN
Addl. Notary
Officer, Mainpuri

(३) इसी अंक में पृष्ठ २४ पर ही—

प्रश्न—जिनवाणी सुनने से ज्ञान होता है और पुण्यबन्ध भी होता है, उससे पंसा भी मिलता है। यह तो दोनों प्रकार से लाभ हुआ ?

उत्तर—सुनने से ज्ञान नहीं होता, पुण्य ही होता है।

प्रश्न बेतुके ढंग का है और उत्तर भी एकदम आगमविरुद्ध है। जिनवाणी श्रवण को सम्यग्दर्शन व ज्ञान की उत्पत्ति में प्रधान कारण कहा है। देखिये देशना लब्धि।

(४) इसी अंक में पृष्ठ २५ पर—

उत्तर—द्रव्य-गुण त्रिकाल शुद्ध ही है और पर्याय में विकार होता है। वह पर्याय की योग्यता से क्षणिक विकार होता है, कर्म से विकार नहीं होता।

यह असंगत है। समयसार जी में भी विकार को कर्मोदयजन्य कहा है। यदि वह स्वतः होता है, तो जीव के शुद्ध भाव स्वभावपने को प्राप्त होगा।

समयसार कलश—"न जातु रागादि निमित्तभावं आत्मात्मनो याति यथार्ककान्तः तस्मिन्निमित्तं परसंग एव वस्तु स्वभावो यमुदेति तावत् ॥"

संसार में जीव के गुण शुद्ध नहीं हैं, तभी समयसार नाटक में पं० बनारसी दास जी ने लिखा है कि अन्तर-आत्मा अपने गुणों (मलीन गुणों) को धोती है।

भेद ज्ञान साबुन भयो समरस निर्मल नीर।
धोबी अन्तर आत्मा धोवै निज गुण चीर॥

स्वयं कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार जी में ३ गाथाओं में 'दर्शन ज्ञान चारित्र कर्म के द्वारा नष्ट होता है,' ऐसा लिखा है—तात्पर्य गुणों के विकार से ही है।

वत्थस्ससेदभावो जह णासेदि मल विमेलणाच्छन्नो।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं पि होदि णादव्वो॥

ATTESTE
MESH CHANDRA
Distt. Notary

(५) सत्य की खोज (भाग दो)—लेखक डा० हुकुमचन्द भारिल्ल, पृष्ठ ४७, "सोचते-सोचते रूपमती न जाने कौन सी दुनिया में खो गई थी कि उसे पता ही न चला कि विवेक कब आ गया, कब उसने कपड़े बदले। उसे तो तब पता चला जबकि उसने अचानक ही पीछे से आकर दोनों हाथों से उसकी आखें बन्द कर लीं, उससे छेड़छाड करने लगा।"

सम्बाद देखिए पृष्ठ ५७ पर—

"यह तो मुझे भी पता है। मैं तो यह पूछ रहा हूं, रानी साहिबा क्या गा रही थीं, गुनगुना रही थीं।"

"जी, राजा साहब ! वही, जो आपने बताया था, समझाया था, दिखाया था कि निमित्त होता है पर करता कुछ नहीं है ....."

दरअसल यह पुस्तक सत्य के बजाय "असत्य की खोज" है, सो मुनि-निंदा से भरी है। इसका अभिप्राय मुनिद्रोह तथा अश्लीलता का उदाहरण ऊपर आपने देखा ही है, जो सिद्धान्तों को बदलने का षड्यन्त्र है। निमित्त को अकिंचित्कर बताया है।

(६) टोडरमल स्मारक ट्रस्ट ने डा० हुकुमचन्द भारिल्ल कृत "धर्म के दशलक्षण" पुस्तक प्रकाशित की है। इनको "दशलक्षण धर्म" शब्द से चिढ़ है। विसंगतियों के एक-दो नमूने देखिये—मिथ्या एकान्त से परिपूर्ण ग्रन्थ है। लेखक को अणुव्रत, महाव्रत, गुप्ति, समिति भी धर्मरूप स्वीकार नहीं हैं। उत्तम सत्य प्रकरण, पृष्ठ ७५–७६ देखिये—

"यहाँ एक प्रश्न सम्भव है कि क्या अणुव्रत, महाव्रत धर्म नहीं ? क्या समिति, गुप्ति भी धर्म नहीं ?

अणुव्रत और महाव्रतों को आचार्य उमास्वामी ने तत्वार्थ सूत्र में आस्रवाधिकार में लिखा है। यद्यपि उन्हें कहीं-कहीं उपचार से धर्म कहा है पर जो आस्रव हों, बन्ध के

कारण हों, उन्हें निश्चय से धर्म संज्ञा कैसे हो सकती है ? गुप्ति समिति भी उत्तम सत्य धर्म नहीं है।

ध्यान देने योग्य बात है कि गुप्ति समिति आदि के अतिरिक्त पृथक् रूप से दशधर्मों की चर्चा आचार्यों ने की है।

उपरोक्त कथन आगमविरुद्ध तथा श्रोताओं को पथभ्रष्ट करने वाला है। लेखक ने तत्वार्थ सूत्र का नवाँ संवर अध्याय व सर्वार्थसिद्धि टीका में उत्तम सत्य आदि धर्मों की परिभाषाओं को देखा तक नहीं है, केवल मानसिक व्यायाम-मनोरंजन व तर्क के बल पर मनगढ़न्त चर्चा की है। कुन्दकुन्द स्वामी की वारस अणुवेक्खा में उत्तम सत्य धर्म का लक्षण लेखक के मिथ्या प्रलाप को उजागर करता है—

"पर संतावय कारणं वयणं मोत्तूण सपरहिदवयणं।
जो वददि भिक्खु तुरियो तस्सदु धम्मं हवे सच्चं ॥"

(उत्तम दशधर्म भावना)

दूसरों की पीड़ा के कारण वचनों को छोड़कर स्व-पर हितकर वचन को जो साधु बोलता है उसके सत्य (उत्तम सत्य) धर्म होता है।

इस आर्ष वाक्य के विपरीत लेखक स्थान-स्थान पर वाणी की सत्यता को सत्य धर्म से विपरीत बताकर तेरह प्रकार के चारित्र की गरिमा को गिराता है।

(७) इसी प्रकार पुस्तक में उत्तम त्याग के वर्णन में—

पृष्ठ १२७—क्योंकि त्याग 'धर्म' है और दान 'पुण्य'। लेखक दान को धर्म नहीं मानता।

पृष्ठ १३१—"यदि आज के सन्दर्भ में गहराई से विचार करें तो सच्चा त्याग तो लोग मलमूत्र का ही करते हैं।"

उपरोक्त प्रकार का लेखन कार्य असत्य एवं आगमविरुद्ध तथा लेखनी व वाणी

का दुरुपयोग है । प्रकाशन केन्द्र की मंशा ही अलग पंथ का समर्थन है । आचार्यों ने निश्चय-त्याग व व्यवहार-त्याग दोनों को धर्म के रूप में स्वीकार किया है । देखिये—

"संयतस्य योग्यं ज्ञानादि दानं त्यागः ।"

"उत्तम त्याग कह्यो जग सारा । औषधशास्त्र अभय आहारा ।
निहचै रागद्वेष निरवारै । ज्ञाता दोनों दान सम्हारै ।"

(सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-६)

वास्तविकता यह है कि त्यागपूर्वक दान या दानपूर्वक त्याग होता है ।

स्मारक के उक्त प्रकाशन की विसंगतियाँ कहाँ तक गिनायें, वह तो अच्छे टाइटिल, कवर प्रिंट आदि का तथा अल्प मूल्य या बिना मूल्य में मिलने वाला "सुबरन कलश सुराभरा" है, सावधान रहना चाहिये ।

(८) ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'प्रवचन रत्नाकार' प्रथमावृत्ति १५ अगस्त १६८१ के कवर पृष्ठ पर ही विवादोत्पादक व्यक्ति कानजी स्वामी का पू० गुरुदेवश्री के रूप में चित्र अंकित है तथा उन्हीं के द्वारा समयसार पर किये गये एकान्त निश्चयाभासी प्रवचनों का यह संग्रह है ।

"प्रकाशकीय" में नेमीचन्द पाटनी लिखते हैं (पैरा २)—

"पूज्य स्वामी जी इस युग के सर्वाधिक चर्चित आध्यात्मिक क्रान्तिकारी महापुरुष हो गये हैं । वर्तमान में दृष्टिगोचर दिगम्बर जैन धर्म की अभूतपूर्व धर्म प्रभावना का श्रेय पूज्य स्वामी जी को ही है । उनका कार्यकाल दिगम्बर जैन धर्म के प्रचार-प्रसार का स्वर्ण युग रहा है ।"

पाठक विचार करें कि यह कथन कितना असत्य है । स्वयं ही बाद में इन्हीं अनुयायियों ने यह प्रस्ताव पास किया कि कानजी को चम्पा बहिन के जाति-स्मरण के आधार पर तीर्थंकर मानना व उसकी सूर्यकीर्ति के रूप में प्रतिमा बनाना आगमविरुद्ध है । हमें धोखा हुआ । ज्ञातव्य है कि स्वयं कानजी अपने को भावी तीर्थंकर मानते थे व

TTESTED
...H CHANDRA JA...
Distt. Notary
...ed Officer, ...

कहते थे तथा उनके जीवन काल में ही मूर्तियाँ निर्माण से वे सहमत थे तथा मानस्तम्भ सोनगढ़ में भगवान महावीर के ऊपर उनकी मूर्ति उनके सामने ही उत्कीर्ण हो चुकी थी। ऐसी स्थिति में इतना घोर पापमय असत्य बोलने वाले, असद् कार्य करने वाले को दि० जैन धर्म प्रसारक कहना इन प्रकाशनों की कितनी विसंगति है। अब इसी पुस्तक के आगम-विरुद्ध अंश देखिए—पृष्ठ ६ कलश १ पर प्रवचन—

"अहाहा........। शैली तो देखो। व्यवहार समकित हो तो निश्चय समकित हो—ऐसा नहीं है। व्यवहार समकित तो वस्तुतः समकित ही नहीं है।

उपरोक्त कथन असमीचीन है क्योंकि सात तत्वों का व देव-शास्त्र गुरु का श्रद्धान व्यवहार सम्यक्त्व है, ऐसा सभी आचार्यों को मान्य है। वह निश्चय का साधक है।

'तत्वार्थश्रद्धानंसम्यग्दर्शनम्।'

(तत्वार्थ सूत्र, प्रथम अध्याय, उमा स्वामी)

"श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥"

(रत्नकरण्ड/२ समन्तभद्र)

"जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।"

(आचार्य कुन्दकुन्द)

"निश्चय व्यवहाराभ्यां मोक्षमार्गो द्विधास्थितः।
तत्राद्यः साध्यरूपः स्याद् दितीयस्तस्य साधनः॥"

(तत्वार्थसार, आ० अमृतचन्द्र)

आचार्य अमृतचन्द्र जी के कलश पर प्रवचन करने वाले तथाकथित स्वामी को उनके तत्वार्थसार का निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग को साध्य-साधन बताने वाले आगमोक्त वर्णन को ठुकराने की आदत सी थी। नाम अमृतचन्द्र सूरि का ले रहे हैं तथा प्रवचन उनके श्रेष्ठ आशय के विपरीत कर रहे हैं।

ATTE
MESH CH
Distt.
azetted Off

पृष्ठ १४ प्रथम पंक्ति में विपरीत वर्णन देखिए—

"आत्मा पर्याय रहित अकेला परमात्मा स्वरूप ही है।"

प्रकाशक की आँखें लोभ और लोकेषणा में इतनी बन्द हैं कि उसे साधारण सी बात "गुणपर्ययवद्द्रव्यं" का दर्शन नहीं है, उसे तो "दिये लोभ चसमाचखनि लघु पुनि बड़ी दिखाय" वाली उक्ति लागू हो रही है, तभी तो द्रव्य को पर्याय रहित प्रकाशित कर रहे हैं।

(६) क्रमबद्ध पर्याय भी इसी ट्रस्ट का एक प्रकाशन है। इसमें एकान्त एवं विपरीत मिथ्यात्व का पोषण किया गया है। लेखक डा० हुकुमचन्द भारिल्ल के एकांत नियतिवाद को श्रद्धा का प्रकाशन है। इस पुस्तक की वृहद् समीक्षायें पं० श्रीमान मोतीचन्द्र कोठारी फलटन व श्रीमान वंशीधर (बीना वालों) ने की है। दरअसल में क्रमबद्ध शब्द भी आगमिक न होकर कानजी के मस्तिष्क की उपज है। देखें, प्रवचन रत्नाकर कलश (पर प्रवचन) जिसे लेखक ने आँख बन्द कर अपना लिया है क्योंकि उन्हें गुरुदेव मानता है। इसमें अकालमरण को स्वीकार न कर उसे भी स्वकाल मरण बताया है (पृष्ठ ६७)। रत्नकरंडक-श्रावकाचार में इसे विद्यमान अर्थ का निषेध करने वाला असत्य वचन कहा गया है। स्वयं कुन्दकुन्द आचार्य ने "भावपाहुड" में अकालमरण का वर्णन किया है : गाथा गोम्मट-सार में भी है, आयु का क्षय हो जाता है।

"विसवेयण रत्तक्खय भय सत्थग्गहण संकिलेसेण।
आहारुस्सासाणं णिरोहदो छिज्जदे आउ॥

आ० अमृतचन्द्र स्वामी ने प्रवचनसार में—१. काल नय, २. अकाल नय का उल्लेख किया है। यदि प्रत्येक कार्य का समय निश्चित होता तो वे अकाल नय क्यों लिखते। छहढाला में भी सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा का लक्षण पं० दौलत-राम जी ने किया है—

STED
ANDRA JA
Notary

निजकाल (स्वकाल) विधि झरना, तासों कछु काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै सोई शिव सुख दरसावै॥

(१०) समय से पूर्व उदीरणा—

लेखक को अकाल शब्द का प्रसिद्ध असमय मृत्यु अर्थ ही इष्ट नहीं है, पता नहीं कौन सा शब्दकोश देखा है। वे लिखते हैं, (पृष्ठ–१०१ पर मनगढन्त निष्कर्ष)—

इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि "अकाल शब्द असमय का सूचक न होकर काल के अतिरिक्त अन्य कारणों का द्योतक है।" विचारणीय है कि अन्य कारणों से तो स्वकाल मरण भी हो सकता है। आगम के षट्खण्डागम, भावपाहुड, तत्वार्थसूत्र आदि में अकालमरण के अस्तित्व को कहीं भी नहीं नकारा है।

आप कहें कि अकालमरण व्यवहार नय से है, निश्चय से नहीं! इसका समाधान यह है कि जगमरण ही व्यवहार नय से है, निश्चय से नहीं, तो उसका भेद अकालमरण भी व्यवहार से है। व्यवहार कथन मात्र नहीं है। अविद्यमान को नहीं कहता। सभी नय वस्तु में विद्यमान अंशों को ग्रहण करते हैं, सत्तारहित को नहीं।

लेखक ने कर्तिकेयानुप्रक्षा की गाथा नं० ३२१–२२–२३ नियतिवाद की सिद्धि हेतु पृष्ठ २० पर उद्धृत की है। यह भी एकान्त का पोषण है, क्योंकि यह अनुप्रेक्षा का चिन्तन स्थिति विशेष में लागू होता है, सर्वत्र नहीं। यह कोई सिद्धान्त नहीं बन गया। सर्वथा लागू कर देने पर पुरुषार्थ का अभाव ही प्राप्त होगा। गोम्मटसार करणानुयोग सिद्धान्त का प्रसिद्ध ग्रन्थ है, जिसमें ३६३ मिथ्यात्वों में एकान्त नियतिवाद को वर्णित किया गया है—

"जन्तुजेण जहा जस्स य णियमेण होदि तन्तुतदा।
तेण तहा तस्स हवे इदिवादो णियदिवादो दु॥"

आगम में क्रमवर्त्ती, क्रमभावी, क्रमनियत, क्रमनियमित शब्द आते हैं। क्रमबद्ध शब्द का प्रयोग ही एकान्त षोषण है। यह भी ज्ञातव्य है कि क्रम है तो अक्रम भी है। देखिये समयसार कलश नं० २६३।

ATTESTED
13-7-04
MESH CHANDRA JAIN
Distt. Notary
Gazetted Officer, Mainpuri

"एवं क्रमाक्रमविवर्तिविर्त्तचित्रं तद् द्रव्यपर्ययमयं चिदिहास्ति वस्तु। पं० जयचन्द छावड़ा ने इसका उपरोक्त अर्थ ही लिखा है।

चारों अनुयोगों का ज्ञाता पाठक इस पुस्तक की विसंगियां शीघ्र समझ सकता है।

(११) काट-छाँट, सफेद झूठ, आँखों में धूल झोंकने का प्रयास देखिए—प्रकाशन स्थान ए–४, बापूनगर, जयपुर, प्रकाशक युवा-फेडरेशन।

(वही टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का एक सिस्टर कंसर्न)

पुस्तक का नाम पंचपरमेष्ठी, विधान २२, अगस्त १९८५, पृष्ठ ४८ पर पंच-परमेष्ठी की आरती छपी है। इसमें ६ आरती ही हैं जबकि प्रसिद्ध है कि इसमें ७ आरती हैं। "छठी ग्यारह प्रतिमाधारी श्रावक बन्दौ आनन्दकारी" निकाल दी गई है तथा सातवीं जिनवाणी की आरती को ही 'छठी आरती श्री जिनवाणी' कहकर सातवीं कोई भी आरती है ही नहीं।

(१२) बच्चों के पाठ्यक्रम में भी निश्चयाभास को अप्रासंगिक रूप से प्रविष्ट किया गया है। बाल-बोध पाठमाला, भाग–२, पृष्ठ २ पर—"भक्त नहीं भगवान बनेंगे।" पृष्ठ ३—"कोई भी शुभाशुभ कर्म सुख कारण नहीं है।" ज्ञातव्य है कि देवपूजा, शास्त्र स्वाध्याय, परोपकार आदि शुभकर्मों को भी यहाँ सुख का कारण नहीं माना गया। बाबू दयाचन्द गोयलीय जी के बालबोध में पापों में हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील परिग्रह का वर्णन है। अब जरा इसी पुस्तक के पृष्ठ ५ पर देखिए·····"पिता—नहीं बेटा, सबसे बड़ा पाप तो मिथ्यात्व है, जिसके वश होकर जीव घोर पाप करता है।" इस पृष्ठ पर आत्मा को समझ लेना ही प्राथमिक कर्त्तव्य बताया गया है। पाप तो बाद में छोड़ने लगेगा, इस प्रकार क्रम बताया है। कच्ची बुद्धि के बालक न अपनी आत्मा को समझ पायेंगे, न पाप को छोड़ पायेंगे। इसी प्रकार के मिलावटदार पाठ्यक्रमों का परिणाम

पापवृद्धि के रूप में ही नजर आता है। पापों के परित्याग पर बल न देने का फल है कि ये लोग पापत्याग रूप अणुव्रत धारण, प्रतिमा धारण आदि तक न करते हैं और न विश्वास रखते हैं। साधु अवस्था धारण करना व साधु-सेवा से तो एलर्जी सी है। "पोथी पढ़-पढ़कर जीवन व्यतीत हो गया, न आत्मा को समझ पाया तथा उन्हीं के द्वारा कथित पापत्याग भी नहीं हो पाया। राग-द्वेष दूर करने का मूल मन्त्र चारित्र तो अपने आप चारित्र मोह के उपशमादि होने पर हो जावेगा, ऐसी मान्यता बना रखी है। निश्चय की प्राप्ति व्यवहारपूर्वक ही होती है, इस बात को हृदयंगम नहीं करते।

पाठ्यक्रमों में निमित्त की अकिंचित्करता तथा द्रव्यों की परिभाषाओं आदि को घुमा-फिरा कर एकान्त उपादानपरक बना दिया गया है। ये कानजी भाई के प्रवचनों से पूर्ण प्रभावित हैं। विकृतियां तो बहुत हैं पर इस संक्षिप्त लेख में कुछ ही उद्धृत हैं।

उपरोक्त प्रकार से कुछ उदाहरण विसंगतियों के दिये हैं ताकि जनसाधारण को यह स्पष्ट हो जावे कि टोडरमल ट्रस्ट का साहित्य कानजी के प्रवचनों से भिन्न आशय वाला नहीं है। उसी स्थान से समन्वय वाणी जैसा साधु-निन्दा का पत्र निकलता है। कुछ ट्रैक्ट भी निकले जिनमें पूजन में अष्ट द्रव्यों की आवश्यकता नहीं है तथा निर्वाण लाडू नहीं चढ़ाना चाहिए आदि असंगत आगमविरुद्ध प्रचार किया गया।

(१३) टोडरमल स्मारक से समयसार नाटक प्रकाशित हुआ है। इसमें नं० एक छन्द में मूल पाठ पण्डित बनारसीदास का निम्न प्रकार है (अन्तिम पंक्ति में)—

"सन्त दशा तिनकी अवलोकि (पहचानि) करें कर जोर बनारसि वंदना।'

किन्तु स्मारक ने अपने प्रकाशन में रेखांकित सन्त के स्थान पर 'शान्त' (सांत) शब्द रख दिया है। यह भ्रमोत्पादक हो गया है तथा अव्रतियों की भी वन्दना आदि के

True copy
ATTESTED
13-7-04
..ESH CHANDRA JAIN
Distt. Notary
..zetted Officer, Mainpuri

प्रचार करने का दुष्प्रयास है। ज्ञातव्य है कि वन्दना साधु की ही होती है। कुन्दकुन्द स्वामी ने "असंजदंण वन्दे" का उद्घोष कर संयत की वन्दना का निषेध किया है।

पण्डित बनारसीदास ने इसी नाटक में आगे अव्रत सम्यग्दृष्टि की प्रशंसा में तो अलग से छन्द लिखा है। मैं समझता हूँ कि उपर्युक्त प्रकार के हेर-फेर लोभी पण्डितों के के द्वारा किए जाते हैं। उन्हीं में कानजी की भी वन्दना आदि का उल्लेख सोनगढ़ी साहित्य में पाया जाता है। यह कार्य धर्मविरुद्ध है।

अपने प्रकाशनों के अतिरिक्त यह स्मारक ट्रस्ट समान विचारधारा वाले अन्य केन्द्रों को मान्यता देता है। कतिपय प्रकाशनों की प्रत्यक्ष-परोक्ष सहायता भी करता है तथा मूल प्रेरणा स्रोत भी वही है। उनमें आगमविरुद्ध तथा मुनि-निन्दापरक उदाहरण प्रस्तुत हैं, जो यहाँ अवश्य ज्ञातव्य हैं। उसके सहयोगी संस्थानों का रूप भी देखें।

१. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग पंचम, श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षुमण्डल, देहरादून का पुष्प न० ५, संग्रहकर्ता—कैलाशचन्द जैन, शिवाजी पार्क, शाहदरा, दिल्ली–३२, पृष्ठ ११६।

प्रश्न २०—"क्या आजकल सच्चे मुनि-क्षुल्लक देखने में नहीं आते हैं ?

उत्तर—हाँ भाई, पंचमकाल में भावलिंगी मुनीश्वर अर्जिका क्षुल्लक का समागम देखने में नहीं आता है।

उपरोक्त कथन भगवान महावीर व आचार्य कुन्दकुन्द की वाणी का अपलाप एवं अवर्णवाद है, क्योंकि आगम में पंचमकाल के अन्त तक भावलिंगी सन्तों का अस्तित्व बताया गया है। ट्रस्ट भावनगर द्वारा "श्री प्रवचनसार" विक्रम संवत् २०३२ में प्रकाशित हुआ, जिसमें संस्कृत टीका वही लिखी है, हिन्दी अर्थ वही है, किन्तु यह वाक्य अपनी तरफ से जोड़ा गया—

"ऐसा वर्णन कथंचित् हो सकता है"

इस एक वाक्य की मिलावट ने आचार्य जयसेन स्वामी के आशय पर पानी फेर दिया। इससे सिद्ध होता है कि मूल आगम में भी मिलावट व बदलाव किया गया है।

बन्धुओ, टोडरमल स्मारक इन कानजी पंथी मिलावटदार साहित्य का संचय, वितरण, पठन-पाठन आदि पहले की भाँति ही कर रहा है तथा इसके प्रकाशनों का मूल आधार भी कानजी का मनगढ़न्त प्रवचन है।

अन्य विसंगति यह है कि यह ट्रस्ट अपने किसी भी प्रकाशन में आचार्य शान्तिसागर से लेकर आचार्य विद्यासागर आदि त्यागी वर्ग के प्रवचन, चित्र आदि नहीं छापता तथा साधु वर्ग के प्रति श्रद्धा व्यक्त नहीं करता है। विशेष यह है कि किन्हीं भी मुनि, आर्यिका-श्रावक-श्राविका की समाधि होने पर दो शब्द श्रद्धांजलि के भी प्रकाशित नहीं करता। इससे ज्ञात होता है कि दिगम्बर जैन धर्म के प्रति इसकी श्रद्धा नहीं है!

समाज को विदित ही है, आज से ४०-५० वर्ष पूर्व ही तेरह-बीस का झगड़ा समाप्त होकर सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज आचार्य शान्तिसागर महाराज के चरणों में संगठित हो चुका था। परन्तु टोडरमल स्मारक ट्रस्ट अब तेरहपन्थ और शुद्ध तेरहपन्थ आदि की आड़ में तेरहपन्थी-बीसपन्थी जनों को लड़ाने कार्य कर रहा है। विवादग्रस्त गड़ा मुर्दा उखाड़कर मुख्य मुद्दा बनाकर अब कलह विसंवाद

...मों से अब उसे सबक लेना चाहिये कि
...बीसपन्थी। अब भी समय है कि आत्म-
...कीभूत होकर गौरवमय हों।

...-६ शिवचरनलाल जैन (मैनपुरी)

...मुनिपने के कथन को ही जो
...में कहा है। कि यह उसका

D हैं। सहारनपुर और हस्तिनापुर के नवीन घटना...
उसकी बातों में न तेरहपन्थी आने वाले हैं और न...
JAB निरीक्षण कर हृदय से मूल दिगम्बरत्व धारा में ए...

अन्य ३६ (?) - जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भा...
पृष्ठ २३८ - २८ ... प्रवृत्ति रूप ...
सच्चा मुनिपना ... उसे आत्मावलो...
हामजादीपक है